उदीयमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन

शिक्षा शास्त्र विषय में पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध की रूपरेखा

शोध निर्देशक

डॉ. मो. जावेद

सहायक प्राध्यापक

शोधकर्ता

अजय कुमार मौर्य

शोध केन्द्र

(शिक्षा विभाग)

आई0 आई0 एम0 टी0 विश्वविद्यालय, मेरठ

उदीयमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन

1. प्रस्तावना

आध्यात्म का मूलाधार दर्शन है। भारत में धर्म और दर्शन परस्पर ऐसे रचे–बसे हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। दोनों की परंपरा समान गति से निरंतर प्रवाहमान द्रष्टव्य है। भारत चिरकाल से एक दर्शन प्रधान देश रहा है। भौतिक जगत् का मिथ्यात्व तथा निराकार ब्रह्म का सत्य एवं सर्वव्यापकता यहाँ सदैव विचार का विषय बने रहे हैं।

भारत में **''दर्शन''** उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। तत्व दर्शन या वेदांत दर्शन का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है। हृदय की गाँठ तभी खुलती है और शोक तथा संशय तभी दूर होते हैं जब एक सत्य का दर्शन होता है। मनु का कथन है कि **''सम्यक दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकता तथा जिनको सम्यक दृष्टि नहीं है वे ही संसार के महामोह और जाल में फंस जाते हैं''**। भारतीय ऋषिओं ने जगत के रहस्य को अनेक कोणों से समझने की कोशिश की है। दर्शन ग्रन्थों को दर्शनशास्त्र भी कहते हैं। भारतीय दार्शनिकों के बारे में टी. एस. एलियट ने कहा था–

''भारतीय दार्शनिकों की सूक्ष्मताओं को देखते हुए यूरोप के अधिकांश महान दार्शनिक स्कूल के बच्चों जैसे लगते हैं''।

भारतीय दर्शन का आरंभ वेदों से होता है। **''वेद''** भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि सभी के मूल स्त्रोत हैं। अनेक दर्शन–संप्रदाय वेदों को अपना आधार और प्रमाण मानते हैं। प्राचीन काल में इतने विशाल और समृद्ध साहित्य के विकास में हज़ारों वर्ष लगे होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। उपलब्ध वैदिक साहित्य संपूर्ण वैदिक साहित्य का एक छोटा–सा अंश है। वैदिक साहित्य का विकास चार चरणों में हुआ है। ये **''संहिता''**, **''ब्राह्मण''**, **''आरण्यक''** और **''उपनिषद''** हैं। **''वेद''** भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि सभी के मूल स्त्रोत हैं। वेदांत दर्षन शब्द **''वेद''** और **''अंत''** इन दो शब्दों के मेल से बना है, अतः इसका वाक्यार्थ वेद अथवा वेदों का अंतिम भाग है।

वेद प्राचीन भारत के पवितत्रतम साहित्य हैं, जो हिन्दुओं के प्राचीनतम और आधारभूत धर्मग्रन्थ भी हैं। भारतीय संस्कृति में वेद सनातन वर्णाश्रम धर्म के मूल और सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, जो ईश्वर की वाणी है। ये विश्व के उन प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथों में से हैं, जिनके पवित्र मन्त्र आज भी बड़ी आस्था और श्रद्धा से पढ़े और सुने जाते हैं। **''विद्''** का अर्थ है: जानना, ज्ञान इत्यादि वेद शब्द संस्कृत भाषा के **''विद्''** धातु से बना है। **''वेद''** हिन्दू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मन्त्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परम्परा की अनुपम कृति है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी पिछले चार–पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थ हैं।

भारतीय चिंतक दर्शन के अध्ययन क्षेत्र को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त करते हैं– तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा दूसरी और पाश्चात्य चिंतक दर्शन के अध्ययन क्षेत्र को मुख्य रूप से पांच भागों में व्यक्त करते हैं– तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, मूल्य मीमांसा, तर्कशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र। यहां इन तीनों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है –

A. **तत्व मीमांसा** – दर्शन में तत्व मीमांसा का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है. इसमें सृष्टि संबंधित तत्व ज्ञान अर्थात सृष्टिशास्त्र, सृष्टि विज्ञान एवं सत्ता विज्ञान आते हैं और आत्मा संबंधित तत्व ज्ञान एवं ईश्वर संबंधित तत्व ज्ञान आते हैं। इसमें सृष्टि–सृष्टा, आत्मा–परमात्मा एवं जीव–जगत के साथ–साथ मानव जीवन की व्याख्या और वास्तविक सौंदर्य की विवेचना भी की जाती है। वास्तविक सौंदर्य की विवेचना को अब सौंदर्य शास्त्र कहते हैं। इस क्षेत्र में अब तक जो कुछ सोचा बिचारा जा चुका है उसकी तार्किक विवेचना इसकी विषय सामग्री है।

तत्वमीमांसा का अर्थ सत्ता (reality)का अध्ययन है। जो कुछ मौजूद है, जगत में जो वास्तविक है, जो यथार्थ (real) है उस वस्तु का अध्ययन तत्वमीमांसा कहलाता है। जिन वस्तु का तत्वमीमांसा के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है, उसे सत्ता कहते हैं। तत्व मीमांसा दर्शन शास्त्र (philosophy) की एक शाखा है। तत्वमीमांसा का शाब्दिक अर्थ "**सत्ता का विश्लेषण**" होता है। जगत में मौजूद सारी सत्ता का विश्लेषण तत्व मीमांसा के अध्ययन से प्राप्त होता है। विज्ञान के विकास होने के पश्चात् तत्व मीमांसा को भौतिकी का स्वरूप दे दिया गया जिसमें पदार्थों का अध्ययन किया जाता है।

तत्वमीमांसा के प्रश्नः

i. किसकी सत्ता है?
ii. सत्ता की मूलभूत इकाई क्या है ?
iii. सत्ता का स्वरूप कैसा है ?
iv. सत्ता की मूलभूत इकाई कितने प्रकार के होते हैं ?
v. सत्ता की व्याख्या कैसे होती है ?
vi. सत्ता की व्याख्या की मुख्य समस्याएं क्या है ?

उपर्युक्त कुछ प्रश्नों के आधार पर संपूर्ण तत्व मीमांसा का विश्लेषण किया जाता है तथा लगभग सभी दार्शनिक इन्हीं प्रश्नों का अलग–अलग उत्तर देने की कोशिश की हैं। तत्व मीमांसा में धीरे–धीरे संगतता आती गई। तत्व मीमांसा का केंद्रीय प्रश्न है सत्ता की मूलभूत इकाई क्या है ?

i. प्रत्यय
ii. जड़ पदार्थ

इन्हीं दोनों प्रकारों से सत्ता की रचना, संरचना तथा आकार का विश्लेषण किया जाता है। तत्व मीमांसा में द्रव्य का ही अध्ययन किया जाता है। द्रव्य की उत्पत्ति उसका स्वरूप इत्यादि के बारे में अध्ययन किया जाता है। धर्म के आधार पर सत्ता को दो भाग में बांटा गया है। जिसकी दो धाराएं बन गईः

- **प्रत्ययवाद**

प्रत्ययवाद का अर्थ आइडिया की या प्रत्यय की सत्ता से होता है। यह विचारधारा कहती है प्रत्यय सर्वप्रथम आता है। फिर वस्तु का निर्माण होता है जैसे दुनिया में सर्वप्रथम मेज का आइडिया आया होगा। उसके बाद मेज का निर्माण हुआ होगा। लकड़ी कितनी भी क्यों ना हो बिना आइडिया के मेज नहीं बनायी जा सकती है। जड़ पदार्थ चाहे कितना भी क्यों ना हो सत्ता की मूलभूत इकाई प्रत्यय आईडिया है। प्रत्यय सभी सत्ता की मूलभूत इकाई है। प्रत्यय वस्तु अथवा जड़ पदार्थ का सत्ता पर निर्भर करता है। यदि आईडिया नहीं होगा तो वस्तु नहीं बन सकती है। प्रत्ययवाद में सारी सत्ता मानसिक होती है। प्रत्यय का निर्माण तब होता है जब हम किसी वस्तु को अपने ज्ञानेंद्रियों से अनुभव करते हैं। उस वस्तु की छाप मस्तिष्क पर छप जाती है। जैसे जब पिघली हुई मोम पर कोई वस्तु डालते हैं तो मोम के ठंडा होने के पश्चात् उस वस्तु की छाप मोम

पर आ जाती है। उसी प्रकार जब हम अपनी ज्ञानेंद्रियों से किसी वस्तु का अनुभव करते हैं यह अनुभव की गयी छाप जब मस्तिष्क पर पड़ती है, उसे ही प्रत्यय/आइडिया कहते है।

<u>प्रत्यायवाद के कुछ विशेषताएं:</u>

a. सत्ता मानसिक होती है।
b. सारी सत्ता ज्ञाता के अंदर होती है।
c. सत्ता ज्ञाता सापेक्ष होती है।
d. प्रत्यय मानसिक होती है।
e. सत्ता अस्तित्व के लिए प्रत्यय पर निर्भर रहती है।

नदी, पहाड़, ग्रह, उपग्रह, ब्रह्मांड, किसी सर्वोच्च सत्ता का आइडिया है जिसे सामान्य भाषा में ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर का मस्तिष्क इंद्रिया अतीत है जिसे असीमित माइंड कहते हैं। प्रत्ययवादी ईश्वर की सत्ता को मानते हैं। सरकार, लोकतंत्र, चुनाव, विवाह, सामाजिक प्रत्यय, वस्तुएं, कार, यह सभी प्रत्यय से निर्मित हुए हैं। आज से 200 साल पहले तक राजतंत्र था। यदि उस समय जॉन लॉक के मस्तिष्क में लोकतंत्र का प्रत्यय नहीं आता तो, आज लोकतंत्र का अस्तित्व संभव नहीं था।

दर्शनशास्त्र के प्रत्ययवाद की विचारधारा प्लेटो के प्रत्ययवाद से विचारात्मक रूप से बिल्कुल अलग है। प्लेटो के प्रत्ययवाद के अंतर्गत कुछ अवधारणा है जो पाश्चात्य दर्शन के प्रत्ययवाद से बिल्कुल अलग है। पाश्चात्य दर्शन में सभी दार्शनिक, प्लेटो को छोड़कर, इसी विचारधारा का अनुसरण करते हैं। तत्व मीमांसा में जो दूसरी विचारधारा यथार्थवाद या वस्तुवाद है वह इस प्रकार है:

- **<u>यथार्थवाद</u>**

यथार्थवाद को अंग्रेजी में Realism नाम से जाना जाता है, या एक ऐसी विचारधारा है जिसकी शुरुआत, मनुष्य के मस्तिष्क में प्राचीन काल में ही हो गई थी। आसान शब्दों में, यथार्थवाद का तात्पर्य एक ऐसी विचारधारा से है, जो हमारे आस–पास मौजूद समस्त वस्तुओं और भौतिक जगत, जिसका हम अपने ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, उसे सत्य मानती है। अभी के समय में यथार्थवाद का नया रूप वैज्ञानिक यथार्थवाद है, जिसे आज भी यथार्थवाद के नाम से ही जाना जाता है। वैज्ञानिक यथार्थवादियों का मानना है, कि यह परिवर्तनशील है और यथार्थवाद के किसी निश्चित रूप को जानना लगभग असंभव है।

<u>यथार्थवाद की विशेषताएं</u>

a. द्रव्य मन से स्वतंत्र होता है।
b. सत्ता ज्ञाता निरपेक्ष है।
c. वस्तुनिष्ठ है।
d. वस्तु के भीतर आईडिया है।
e. सत्ता की मूल इकाई जड़ पदार्थ है।
f. सत्ता का अस्तित्व जड़ पदार्थ पर निर्भर करता है।
g. नदी, पहाड, पठार, उपग्रह, ग्रह, किसी सुप्रीम माइंड से नहीं बने है।

h. ईश्वर की सत्ता नहीं है।

i. यथार्थवाद ईश्वर को नहीं मानता हैं।

j. लोकतंत्र, समाजवाद, चुनाव, विवाह जैसे मानसिक प्रत्यय का खंडन होता है।

k. मनुष्य के माइंड की प्रासंगिकता कम हो जाएगी।

B. **ज्ञान मीमांसा** – ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में मानव बुद्धि, ज्ञान के स्वरूप, ज्ञान की सीमा, ज्ञान की प्रमाणिकता, ज्ञान प्राप्त करने के साधन, ज्ञान प्राप्त करने की विधियां, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच में संबंध, तर्क की विधियां, सत्य–असत्य प्रमाण और भ्रम की व्याख्या आती है। इस क्षेत्र में अब तक जो कुछ सो चा बिचारा जा चुका है उसकी तार्किक विवेचना इसके विषय सामग्री है।

ज्ञानमीमांसा दर्शनशास्त्र की एक शाखा है। दर्शनशास्त्र का ध्येय सत्य के स्वरूप को समझना है। आधुनिक काल में **''देकार्त''** (1596–1650 ई.) को ध्यान आया कि प्रयत्न की असफलता का कारण यह है कि दार्शनिक कुछ अग्रिम कल्पनाओं को लेकर चलते रहे हैं। दर्शनशास्त्र को गणित की निश्चितता तभी प्राप्त हो सकती है, जब यह किसी धारणा को, जो स्वतरू सिद्ध नहीं, प्रमाणित किए बिना न मानें। उसने व्यापक संदेह से आरंभ किया। उसकी अपनी चेतना उसे ऐसी वस्तु दिखाई दी, जिसके अस्तित्व में संदेह ही नहीं हो सकता। संदेह तो अपने आप चेतना का एक आकार या स्वरूप है। इस नींव पर उसने अपने विचार में, परमात्मा और सृष्टि के अस्तित्व को सिद्ध किया। देकार्त की विवेचन–विधि नई थी, परंतु पूर्वजों की तरह उसका अनुराग भी तत्वज्ञान में ही था।

''**जॉन लॉक**'' (1632–1704 ई.) ने अपने लिये नया मार्ग चुना। सदियों से सत्य के विषय में विवाद होता रहा है। पहले तो यह जानना आवश्यक है कि हमारे ज्ञान की पहुँच कहाँ तक है। इसी से ये प्रश्न भी जुड़े थे कि ज्ञान क्या है और कैसे प्राप्त होता है। यूरोप महाद्वीप के दार्शनिकों ने दर्शन को गणित का प्रतिरूप देना चाहा था, लॉक ने अपना ध्यान मनोविज्ञान की ओर फेरा ''मानव बुद्धि पर निबंध'' की रचना की। यह युगांतकारी पुस्तक सिद्ध हुई, इसे **''अनुभववाद''** का मूलाधार समझा जाता है।

''जार्ज बर्कले'' (1684–1753) ने लॉक की आलोचना में ''मानवज्ञान'' के नियम लिखकर **''अनुभववाद''** को आगे बढ़ाया, और **''डेविड ह्यूम''** (1711–1776 ई.) ने ''मानव प्रकृति'' में इसे चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

''**ह्यूम**'' के विचारों का विशेष महत्व यह है कि उन्होंने कांट (1724–1804 ई.) के ''**आलोचनवाद**'' के लिये मार्ग खोल दिया। कांट ने **''ज्ञानमीमांसा''** को दर्शनशास्त्र का केंद्रीय प्रश्न बना दिया। किंतु पश्चिम में ज्ञानमीमांसा को उचित पद प्रप्त करने में बड़ी देर लगी।

गौतम का न्यायसूत्र

भारत में कभी इसकी उपेक्षा नहीं हुई। गौतम के न्यायसूत्रों में पहले सूत्र में ही 16 विचार–विषयों का वर्णन हुआ है, जिसके यथार्थ ज्ञान से निरूश्रेयस की प्राप्ति होती है। इनमें प्रथम दो विषय ''**प्रमाण**'' और ''**प्रमेय**'' हैं। ये दोनों ज्ञानमीमांसा और ज्ञेय तत्व ही हैं। यह उल्लेखनीय है कि इन दोनों में भी प्रथम स्थान **''प्रमाण''** को दिया गया है।

ज्ञानमीमांसा में प्रमुख प्रश्न

"ज्ञान", **"ज्ञाता"** और **"ज्ञेय"** का संबंध है। देकार्त ने अपने अनुभव के विश्लेषण से आरंभ किया, परंतु मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसका अनुभव शून्य में नहीं विकसित होता। दर्शनशास्त्र का इतिहास वादविवाद की कथा है। प्लेटो ने अपना मत संवादों में व्यक्त किया। संवाद में एक से अधिक चेतनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। ज्ञानमीमांसा में विवेचन का विषय वैयक्तिक चेतना नहीं, अपितु सामाजिक चेतना बन जाती है। ज्ञान का अपना अस्तित्व तो असंदिग्ध है, परंतु इसमें निम्नलिखित स्वीकृतियाँ भी निहित होती हैं–

a. ज्ञान से भिन्न ज्ञाता है, जिसे ज्ञान होता है।
b. ज्ञान एक से अधिक ज्ञाताओं के संसर्ग का फल है।
c. ज्ञान का विषय ज्ञान से भिन्न है।

प्रत्येक धारणा सत्य होने का दावा करती है। परंतु मीमांसा इस दावे को उचित जाँच के बिना स्वीकार नहीं कर सकता। हम अभी इन धारणाओं की परीक्षा करेंगे, परंतु पहले ज्ञान के स्वरूप पर कुछ कहना आवश्यक है।

ज्ञान का स्वरूपः सम्मति, विश्वास और ज्ञान

जब हम किसी धारणा को सुनते हैं या उसका चिंतन करते हैं तो उस सबंध में हमारी वृत्ति इस प्रकार की होती है –

i. हम उसे सत्य स्वीकार करते हैं।
ii. उसे असत्य समझकर अस्वीकार करते हैं।
iii. सत्य और असत्य में निश्चय न कर सकें, तो स्वीकृति अस्वीकृति दोनों को विराम में रखते हैं। यह संदेह की वृत्ति है।
iv. उपन्यास पढ़ते हुए हम अपने आपको कल्पना के जगत में पाते हैं और जो कुछ कहा जाता है, उसे हम उस समय के लिये तथ्य मान लेते हैं।
v. यह काल्पनिक स्वीकृति है।

ज्ञान और ज्ञाता

अनुभववाद के अनुसार, ज्ञानसामग्री के दो ही भाग हैं– प्रभाव और उनके बिंब। द्रव्य के लिये इनमें कोई ज्ञान नहीं। ह्यूम ने कहा कि जिस तरह भौतिक पदार्थ गुणसमूह के अतिरिक्त कुछ नहीं, उसी तरह अनुभवी अनुभवों के समूह के अतिरिक्त कुछ नहीं। इन दोनों समूहों में एक भेद है– कुल के सभी गुण एक साथ विद्यमान होते हैं, चेतन की चेतनावस्थाएँ एक दूसरे के बाद प्रकट होती हैं। चेतना श्रेणी या पंक्ति है और किसी पंक्ति को अपने आप पंक्ति होने का बोध नहीं हो सकता। हृदय की व्याख्या में स्मरण शक्ति के लिये कोई स्थान नहींय जैसे विलियम जेम्स ने कहा, अनुभववाद को स्मृति माँगनी पड़ती है। ह्यूम ने ज्ञाता को ज्ञानसामग्री में नहीं मिलाया वह वहाँ मिल ही नहीं सकता था। अनुभववाद के लिये प्रश्न था– अनुभव क्या बताता है ? कांट ने पूछा– अनुभव बनता कैसे है? अनुभव अनुभवी की क्रिया के बिना बन ही नहीं सकता।

पुरुषबहुत्व

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। हमारा सारा जीवन और मनुष्यों के साथ व्यतीत होता है। पुरुषबहुत्व व्यापक स्वीकृति है। मीमांसा के लिये प्रश्न यह है कि इस स्वीकृति की स्थिति दृढ़ विश्वास की स्थिति है या ज्ञान की ? इस विषय में स्वप्न संदेह का

कारण है। स्वप्न में मैं देखता, सुनता प्रतीत होता हूँ। अन्य मनुष्यों के साथ संसर्ग भी होता प्रतीत होता है। क्या जागरण और स्वप्न का भी स्वप्न की प्रतीति तो नहीं ? अहंवाद के अनुसार सारी सत्ता भारी कल्पना ही है। हमारा सामाजिक जीवन अहंवाद का खंडन है, परंतु प्रश्न तो सामाजिक जीवन के संबंध में ही है। क्या यह जीवन विश्वास मात्र ही तो नहीं ? अहंवाद के विरुद्ध कोई ऐसा प्रमाण नहीं जिसे अखंडनीय कह सकें। जब हम ऐसे संदेह से ग्रस्त होते हैं तो, जैसा ह्यूम ने कहा है, थोड़े समय के बाद हम अपने आपको थका पाते हैं और हमारा ध्यान विवश होकर दुनिया की ओर फिरता है, जिसमें भौतिक पदार्थ भी हैं और चेतन प्राणी भी। जब बुद्धि काम नहीं करती, प्रकृति हमारी सहायता करती है।

"अनुभववाद" के अनुसार सारा ज्ञान अंत में प्रभावों और उनके चित्रों से बनता है। प्रभाव में गुणबोध और वस्तुवाद का भेद कर सकते हैं। चित्र में प्रतिबिंब और प्रत्यय का भेद होता है। प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय किसी विशेष गुण का चरिचय देती है – आँख रूप का, कान शब्द का, नाक गंध का। इन गुणों के समन्वय से वस्तुज्ञान प्राप्त होता है। इसे प्रतिबोध या प्रत्यक्ष भी कहते हैं। ऐसे बोध में ज्ञान का विषय ज्ञाता के बाहर होता है, प्रतिबिंब और प्रत्यय अंदर होते हैं। यह बाहर और अंदर का भेद कल्पना मात्र है या तथ्य है, ज्ञानमीमांसा में यह प्रमुख प्रश्न रहा है। प्रतिबोध या प्रत्यक्ष ज्ञान ने जितना ध्यान आकर्षित किया है, उतना ज्ञानमीमांसा में किसी अन्य प्रश्न ने नहीं किया।

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के दो प्रमुख चिह्न हैं ––

i. प्रत्यक्ष इंद्रिय और विषय के संपर्क का परिणाम होता है।
ii. प्रत्यक्ष में चित्त विषय के आकार को ग्रहण कर लेता है।

इसका अर्थ यह है कि **"प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पनामात्र नहीं होता और इसमें किसी प्रकार की भ्रांति नहीं होती।"** यह तो स्पष्ट ही है कि हमारे पास प्रत्यक्ष से अधिक विश्वस्त ज्ञान नहीं, परंतु प्रश्न यह है कि विषयी और विषय में सीधा संपर्क हो भी सकता है या नहीं। यदि ऐसा संपर्क होता है, तो भ्रांति कैसे प्रविष्ट हो जाती है? विषयी और विषय में कुछ अंतर होता है। इस अंतर की दशा हमारे बोध को प्रभावित करती है। जंगल के वृक्ष दूर से हरे नहीं दीखते, क्योंकि उनके रंग के साथ बीच में पड़ने वाली वायु का रंग भी मिल जाता है। फिर, हमारी इंद्रिय की अवस्था भी एक सी नहीं रहती, कान का रोगी पदार्थों को पीला देखता है। कुछ विचारक कहते हैं कि हम बाह्य पदार्थों को नहीं देखते, उनके चित्रों को देखते हैं, इन चित्रों के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये बाह्य पदार्थों के अनुरूप हैंय यहाँ भ्रांति की संभावना सदा बनी रहती है।

<u>ज्ञान की सीमाएँ</u>

कांट ने अपनी विख्यात पुस्तक **"शुद्ध बुद्धि की समालोचना"** को इन शब्दों के साथ आरंभ किया –

"इस बात में तो संदेह ही नहीं हो सकता कि हमारा सारा ज्ञान अनुभव के साथ आरंभ होता है। क्योंकि यह कैसे संभव है कि बोध शक्ति कुछ करने लगे, सिवाय इसके कि हमारी इंद्रियों को प्रभावित करनेवाले पदार्थ इसे यह क्षमता दें। परंतु यद्यपि हमारा सारा ज्ञान अनुभव के साथ आरंभ होता है, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सारा ज्ञान अनुभव की ही देन है"।

कांट ने अनुभव की बनावट में बुद्धि के भागदान पर बल दिया। ऐसा करने पर भी, उसने आरंभ में कहा कि हमारा विचार प्रकटनों की दुनिया से परे नहीं जा सकता। पीछे उसने अनुशीलक बुद्धि और व्यावहारिक बुद्धि में भेद किया और कहा कि अनुशीलक बुद्धि ज्ञान देती है, परंतु यह ज्ञान प्रकटनों की दुनिया से परे ही सत्ता है।

C. **मूल्य मीमांसा** – मूल्यमीमांसा दर्शन की एक शाखा है। मूल्यमीमांसा अंग्रेजी शब्द ''**एग्जियोलॉजी**'' का हिंदी रूपांतर है। एग्जियोलॉजी शब्द ''**एक्सियस**'' शब्द यूनानी शब्द ''**एक्सियस**'' और ''**लागस**'' का अर्थ मूल्य या कीमत है तथा ''**लागस**'' का अर्थ तर्क, सिद्धांत या मीमांसा है। अतः एग्जियोलॉजी या मूल्यमीमांसा का तात्पर्य उस विज्ञान से है जिसके अंतर्गत मूल्य स्वरूप, प्रकार और उसकी तात्विक सत्ता का अध्ययन या विवेचन किया जाता है। किसी वस्तु के दो पक्ष हो सकते है – तथ्य और उसका मूल्य।

तथ्य पर विचार करना उस वस्तु का वर्णन कहलाएगा और उसके मूल्य का निरूपण उसका गुणादषारण। मूल्य विषयक निर्णय वस्तु की किसी आदर्श से तुलना करके किसी व्यक्ति द्वारा उपस्थित किया जाता है। हमारे सभी अनुभवों में मूल्यों मापदंड ही होते हैं। सौंदर्यशास्त्र में सुंदर–असुंदर का मूल्यांकन, संगीत, साहित्य और कला में माधुर्य और सरसता का मूल्यांकन और धर्म में मूल्यों के संरक्षण का प्रयत्न तो सभी को स्वीकृत है किंतु साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि आचारशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि में भी मूल्यों की समस्याओं पर ही विचार किया जाता है। मूल्यमीमांसा के अंतर्गत इन सभी शास्त्रों और विज्ञानों के मूल्यों का अलग विवेचन नहीं किया जाता वरन् इन सर्वव्यापी मूल्यों के स्वरूप और प्रकृति पर विचार किया जाता है। इस प्रकार आधुनिक युग में मूल्यमीमांसा दर्शन की एक शाखा बनकर द्रुत गति से पल्लवित हो रही है।

मूल्य का तात्पर्य किसी मूल्य का भाव हो सकता है या उसका अभाव हो सकता है। इसके अतिरिक्त भाव या अभाव न होकर कोई मूल्य तटस्थ भी हो सकता है। मूल्य शब्द का प्रयोग इनमें से किसी भी स्थिति के लिये हो सकता है। इसलिये मूल्यमीमांसा को मूल्य का विज्ञान कहना अधिक युक्तिसंगत नहीं हे। फिर भी सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि जिस प्रकार आचार शास्त्र का विवेचन सही और गलत पर केंद्रित रहता है वैसे ही मूल्यमीमांसा का विवेचन प्रायरू अच्छे और बुरे से संबंधित होता है।

पश्चिमी दर्शन में प्लेटो के प्रत्यय सिद्धांत के साथ मूल्यमीमांसा का उदय हुआ और अरस्तू के आचारशास्त्र, राजनीति और तत्वविज्ञान में उसका विकास हुआ। स्टोइक और एपीक्यूरियन लोगों ने जीवन के उच्चादर्श खोजे। ईसाई दार्शनिकों ने अरस्तू के उच्चतम मूल्य का ईश्वर से तादात्म्य दिखाने का प्रयत्न किया। आधुनिक दार्शनिकों ने स्वतंत्र रूप से विभिन्न मूल्यों का स्वरूप निर्धारण किया। कांट ने सौंदर्य और धर्म विषयक मूल्यों की सबसे प्रथम गहन विवेचना की। हीगेल के अध्यात्मवाद में आचार, कला और धर्म सर्वोपरि मान्य ठहराए गए। इन्हीं के समन्वय से निरपेक्ष प्रत्यय की उद्भावना होती है। 19वीं शताब्दी के विकासवादी सिद्धांत, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र के अंतर्गत मूल्यों की व्यावहारिक विवेचना की जाने लगी। उसके तात्विक स्वरूप के निरूपण और एकत्व की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया। नीत्शे ने इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया। ब्रेंटानों प्रेम को ही एकमात्र मूल्य मानता था। डब्ल्यू. एम. अरबन ने 20वीं शताब्दी में सबसे पहले मूल्यमीमांसा पर एक व्यवस्थित ग्रंथ (वेलूएशन, 1909) लिखा। समकालीन प्रमुख रचनाएँ, बी. बोसांके की षदि प्रिंसिपल ऑव इंडीविजुएलटी ऐंड वेल्यू (1912), डब्ल्यू. आर. सरले की मारल वेल्यूज, (1918) और दि आइडिया ऑव गॉड (1921), एस. एलेक्जेंडर की स्पेस, टाइम एण्ड डाइटी (1920), एन. ह्वाइटमैन की एथिके (1926), आ. वी. पेरी की जनरल थ्योरी ऑव वेल्यू (1926) और जे. लेयर्ड की दि आइडिया ऑफ वेल्यू आदि पुस्तकें है।

मूल्यमीमांसा के अंतर्गत मुख्यतः मूल्य का स्वरूप, मूल्य के प्रकार, मूल्य का भाव सिद्धांत और मूल्य के तात्विक संस्करण का अध्ययन किया जाता है। दार्शनिकों ने मूल्य के स्वरूप की अवधारणा विभिन्न प्रकार से की है। स्पिनोजा आदि ने उसी को

मूल्य माना है जिससे किसी इच्छा की तृप्ति होती है। एपीक्यूरस, बेंथम, मीनांग आदि सुखवादी दर्शनिक सुख को ही मूल्य मानते हैं। मूल्य का स्वरूप पैरी की दृष्टि में अभिरूचि, मार्टीन्यू के विचार से वरीयता (प्रिफेरेंस), स्टाइक, कांट और रायस के लिये शुद्ध तर्कसंगत इच्छा, टी. एच. ग्रीन के लिये व्यक्तित्व के एकत्व का सामान्य अनुभव हैय नीत्शे और अन्य उत्क्रांतिवादी उसी अनुभव को मूल्य मानते हैं जो जीवन के विकास में किसी प्रकार सहायक हो। कुछ दार्शनिक जैसे स्पिनोजा, लोट्ज या डीवी आदि फलवादी मूल्य को व्यक्तिगत मानते हैं। उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। वह तो व्यक्ति की रूचि, अरूचि और उसकी मानसिक स्थिति तथा आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। इसके विपरीत लेयर्ड, मूर आदि मनीषी मूल्य को रूप, रस, गंध की भाँति विषयगत मानते हैं। एलेक्जेंडर की स्थिति इन दोनों मतों के मध्य में हे। व्यक्ति, जो मूल्य का अनुभव करता है और वस्तु जिसके मूल्य का अनुभव किया जाता है, दोनों के संबंध में ही मूल्य का अस्तित्व है। व्यक्ति और वस्तु के संबंध से पृथक् अथवा स्वतंत्र रीति से दो में से किसी एक में मूल्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। ए. जी. आयर को तार्किक भाववादी दृष्टिकोण है, इसलिये वे मूल्य को अर्थहीन कहते हैं।

मूल्य विभिन्न प्रकार के होते हैं। उनका कई प्रकार से विभाजन किया जा सकता है। प्रायः दार्शनिक अंतर्वर्ती और बहिर्वर्ती मूल्यों का भेद करते है। अंतर्वर्ती मूल्य का स्वतंत्र रूप से अपने लिये ही मूल्य होता है। इन मूल्यों को पाने का प्रयत्न इसलिये नहीं किया जाता कि उनके द्वारा किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। वस्तुतरू इन मूल्यों को पा लेना ही अंतिम लक्ष्य होता है। बाह्यमूल्य अंतर्वर्ती मूल्यों की प्राप्ति के लिये एक साधन या यंत्र मात्र होते हैं। एक ओर ऐसे वेदांत दर्शन हैं जिनका विश्वास है कि निर्गुण बाह्यरूप में अंतर्वर्ती मूल्य की ही अंतिम सत्ता है, उसके अतिरिक्त सभी बहिर्वर्ती मूल्य हैं जो भ्रांति मात्र है। दूसरी ओर ऐसे फलवादी हैं जो यंत्रवादी सिद्धांत (इंस्टक्र मेंटलिज्म) का समर्थन करते हैं और अंतर्वर्ती मूल्यों का खंडन करते हैं। द्वैतवादी मूल्यमीमांसक अंतर्वर्ती और बहिर्वर्ती दोनों प्रकार के मूल्यों का अस्तित्व मानते हैं। एक शाश्वत होते है और दूसरे नश्वर अधिकांश दार्शनिक इसी सिद्धांत को थोड़े बहुत हेर फेर से स्वीकार करते हैं। कुछ अंतर्वर्ती मूल्यों को प्रधानता देते है और बहिर्वर्ती मूल्यों को उनके अधीनस्थ मानते हैं। कुछ लोग बहिर्वर्ती मूल्यों को प्रधानता देते हैं और अंतर्वर्ती मूल्यों को बहिर्वर्ती मूल्यों की उत्पत्ति या परिणाम मानते हैं। कुछ दार्शनिक (बाहम) ऐसे भी हैं जो सभी वस्तुओं में दोनों प्रकार के मूल्य अपरिहार्य रूप से मानते हैं। वे यह नहीं अस्वीकार करते कि कहीं एक की प्रधानता होती है तो कहीं दूसरे की किंतु ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें शुद्ध अंतर्वर्ती या बिल्कुल बहिर्वर्ती मूल्य ही हों।

सामान्य रूप से शुभ, सत्य, शिव, सुंदर और पवित्र ही अंतर्वर्ती मूल्य माने जाते हैं। कुछ लोग इनके साथ दैहिक कल्याण, संबंध, कार्य और क्रीड़ा को भी अंतर्वर्ती मूल्य मान लेते हैं। मांटेग के विचार से सत्य को सही रूप में मूल्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि कुछ सत्य मूल्यहीन होता है और कुछ तटस्थ अर्थात् उसमें मूल्य होने न होने का प्रश्न ही नहीं होता। धार्मिक मूल्यों के संबंध में भी दार्शनिकों में मतभेद है। कुछ लोग उसे एक विशिष्ट प्रकार का मूल्य मानते हैं और कुछ लोग अन्य मूल्यों के प्रति एक विशिष्ट प्रकार के दृष्टिकोण को ही धार्मिक मूल्य समझते हैं।

मूल्य का माप सिद्धांत मनोवैज्ञानिक हो सकता है और तार्किक भी। सुखवादी दार्शनिक मूल्य की माप सुखानुभूति से करते हैं। एरेस्टीपस व्यक्ति के सुख और बेंथम समाज के सुख का मूल्य को मापदंड मानते हैं। बेंथम ने ऐसे सुखगणक की खोज की थी जिसमें सुख की गहनता, स्थायित्व, निश्चितता, निकटत्व, उपयोगिता, पवित्रता आदि के अंक निर्धारित कर सुख को मापा जा सकता है। यह मूल्य के मापन का मनोवैज्ञानिक प्रयास है। मारटेन्यू और ब्रेंटानों अंतदृष्टि से मूल्य की माप संभव समझते हैं। कुछ अध्यात्मवादियों ने वस्तुगत आदर्श निश्चित कर रखे हैं और उन्हीं से तुलना करके मूल्यों का मापन करते हैं। कुछ दार्शनिक समष्टि और सामंजस्य में ही मूल्य का गुणावधारण उचित बतलाते हैं। प्रकृतिवादी दार्शनिक जैविक विकास और

वातावरण से समंजन को मूल्य की माप मानते हें। जिस वस्तु, क्रिया या परिस्थिति में जीव का विकास अधिक द्रुत गति से होता है उसका अधिक मूल्य है इसके विपरीत जिनसे जीवन में बाधा उपस्थित होती है, उनको मूल्य नहीं दिया जाता।

मूल्य का तात्विक संस्तरण निर्धारित करते समय चरमतत्व से उसका संबंध निश्चित किया जाता है। यदि मूल तत्व सत् है तो मूल्य का उससे क्या संबंध है? इस संबंध में मुख्यतः तीन सिद्धांत हैं–––व्यक्तिवादी, तार्किक वस्तुवादी और तात्विक वस्तुवादी। व्यक्तिवादी मूल्य को मानवी अनुभव से संबद्ध और आश्रित मानते हैं। मूल्य व्यक्ति के मन की ही उत्पत्ति है। वस्तु से उसका संबंध नहीं है। व्यक्ति अपनी परितृप्ति के अनुसार वस्तु में मूल्य का आरोपण करता है। **"प्रियो–प्रिय उपेक्ष्यचेत्याकारा मणिग्रास्यरू, सृष्टा जीवैरीशसृष्टं रूपं साधारणां मिषु"** (पंचदशी,4122) प्रिय, अप्रिय और उपेक्षा करने योग्य मणि के तीन आकार जीवरचित हैं तथा उसका साधारण मणिरूप ईश्वर निर्मित है। प्रिय, अप्रिय और उपेक्षा भाव व्यक्ति व्यक्ति में भिन्न होने के कारण निश्चय ही व्यक्ति के मन की रचनाएँ हैं। सुखवादी, भाववादी और प्रकृतिवादी भी इसी से मिलते–जुलते मतों का समर्थन करते हें। वस्तुवादी इस सिद्धांत का खंडन करते हैं। वे मूल्य को मानसिक रचना मात्र नहीं मानते हैं। मूल्य का वस्तु में स्वतंत्र अस्तित्व है। व्यक्ति उस मूल्य को पहचाने न पहचाने, फिर भी वह अपना अस्तित्व सुरक्षित रखता है। सभी वस्तुवादियों का एक मत नहीं हैं। कुछ वस्तुवादी मूल्य का तार्किक विश्लेषण करते हैं और तार्किक वस्तुवादी कहलाते हैं। कुछ वस्तुवादी तात्विक दृष्टि से मूल्य का निर्धारण करते हैं। वे तात्विक वस्तुवादी (मेटाफिजीकल आब्जेक्टिविस्ट) कहे जा सकते हैं। तार्किक वस्तुवादी मूल्य को मानस रचना न मानने के कारण उसे एक सार या द्रव्य मानते हैं। वह वस्तु में रहते हुए भी कोई ऐसी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखता जो वस्तु या सत् पर कोई प्रभाव डाल सके या परिवर्तन कर सके। यहाँ सत् और मूल्य में स्पष्ट भेद रखा जाता है। तात्विक वास्तुवादी मूल्य की तात्विक यथार्थता स्वीकार करते हें और उस सत् का ही एक अंग मानते हैं।

मूल्य मीमांसा के क्षेत्र में मानव जीवन के आदर्श एवं मूल्यों की विवेचना आती है। मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की विवेचना आती है और मानव के करणीय तथा अकरणीय कर्मों की विवेचना को ही नीति शास्त्र कहते है। हम जानते है कि कोई भी आदर्श, मूल्य का रूप तभी धारण करता है जब वह हमारे आचरण में परिलक्षित होता है, हमारे आचरण का अंश बन जाता है। इसमें इस शब्द की व्याख्या के साथ–साथ जीवन की वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त करने की विधियां भी आती हैं।

शैक्षिक आवश्यकताओं को शिक्षार्थियों की आवश्यकताएँ भी कहा जा सकता है। सामान्य रूप से किसी भी डिग्री या शिक्षा को पूर्ण करने के लिए हर छात्र की कुछ आवश्यकताएं हैं। एक स्वस्थ कक्षा, अच्छे शिक्षक, एक अच्छी अध्ययन दिनचर्या, एक अच्छा ऑनलाइन शिक्षण ऐप, इन सभी को छात्रों की शैक्षिक आवश्यकता कहा जा सकता है। अलग–अलग छात्रों की अलग–अलग आवश्यकताएँ हो सकती हैं। विशेष छात्रों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताएँ होती हैं। छात्रों की सभी आवश्यकताएँ महत्वपूर्ण होती है और आवश्यकताओं को पूरा करना किसी भी देश की सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। कुछ छात्रों की विशेष जरूरतें होती हैं और उसी के साथ छात्रों की मदद करने के लिए कई कार्यक्रम होते हैं। इस तरह के कार्यक्रम विशेष रूप से शारीरिक, अधिगम और विकासात्मक रूप से विकलांग तथा व्यवहारिक, संचार और भावनात्मक विकारों वाले छात्रों के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं। शैक्षिक आवश्यकताओं के उदाहरण हैं संचार, भाषण, भाषा की जरूरतें, व्यवहारिक, सामाजिक, भावनात्मक कठिनाइयाँ, मध्यम सीखने की कठिनाइयाँ, विशिष्ट सीखने की कठिनाइयाँ। एक बच्चे की ऐसी आवश्यकताओ को निश्चित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए और उन्हें सही समय पर पूर्ण किया जाना चाहिए ताकि उन्हें बेहतर जीवन दिया जा सके। हर कोई एक अच्छे जीवन और अच्छी शिक्षा का हकदार है।

2. समस्या कथन

''उदयीमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन''।

3. अध्ययन की आवश्यकता और महत्व

आज जब व्यक्ति जीवन में भ्रान्ति और क्लान्ति से पीड़ित है, समाज भ्रष्टाचार, दुराचार तथा अत्याचार की व्याधियों से ग्रस्त है, राजनितिक जीवन को उभरने की बजाय उसे नष्ट कर रही है, विज्ञान मनुष्य की समृद्धियो को बढ़ाने के बजाय हवा पानी तथा पृथ्वी पर जहर बो रहा है, तब निश्चय ही हमें इस बात का पूरी तरह से चिंतन और मनन करना होगा की किस तरह हमें इस स्थिति से मुक्ति मिल सकती है। चूँकि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसकी सहायता से हम मानव को किसी विशिष्ट दिशा में ले जा सकते है इसलिए आज की परिस्थिति में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का अध्ययन आवश्यक हो गया है।

अगर हम आज की शैक्षिक परिस्थितियों में वेदांत दर्शन के मूल्यों को आत्मसात करें तो निश्चय ही हम शिक्षा के क्षेत्र में उन बीजो को बो सकेंगे जो कालांतर में वृक्ष बन छात्रों के जीवन में पतझड़ की बजाय सृजन, कृन्दन के बजाय हास्य की सृजना कर सकेंगे। शिक्षा के क्षेत्र में घोर दुर्व्यवस्था फैली हुई है। शिक्षा संस्थाओ में अशांति का वातावरण, अनुशासनहीनता स्थापित हो गयी है, नैतिकता का पतन हो रहा है, शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन गिर रहा है आदि।

आज जब व्यक्ति जीवन में यह विकट समस्या है कि अभी तक स्कूलों के पाठ्यक्रम में वेदान्त शिक्षा, जिसके क्षेत्र तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा है, को शामिल नहीं किया है। जबकि तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा आधुनिक विज्ञान के स्तंभों में से एक है। यह न केवल एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दिलचस्प है, बल्कि एक शैक्षिक दृष्टिकोण से भी बेहद समृद्ध है। आजकल, छात्रों में मूल्यों, नैतिकता, सुजनात्मकता आदि का ह्रास होता जा रहा है। छात्र सूत्रों और तथ्यों को रटकर याद करना सीखते है और कुछ समय बाद में उसे भूलकर शून्य हो जाते है। रटकर याद करने का यह तरीका कठोर और अपर्याप्त होता है। तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा छात्रों को मूलभूत नियमों और तथ्यों के बारे में प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करते है। इसीलिए विद्यालयों और शिक्षकों द्वारा विशेष रूप से किशोरावस्था तक की आयु में उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तत्वमीमांसा ज्ञान, मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा आधारित शिक्षा का भी उपयोग किया जाना चाहिए जिससे छात्रों को वैचारिक, भावनात्मक, संवेगात्मक रूप से मज़बूत बनाया जा सके। इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन में छात्रों की उदयीमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाएगा।

4. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य –

i. वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा का अध्ययन करना।
ii. वेदांत दर्शन में उल्लिखित ज्ञान मीमांसा का अध्ययन करना।
iii. वेदांत दर्शन में उल्लिखित मूल्य मीमांसा का अध्ययन करना।

iv. वर्तमान समय में छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की खोज करना।

v. उदयीमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

5. संबंधित साहित्य सर्वेक्षण

संबंधित साहित्य का तात्पर्य है, अनुसंधान की समस्या से संबंधित उन सभी प्रकार की पुस्तको, ज्ञान–कोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों तथा अभिलेखों से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण अध्ययन की रूपरेखा तैयारकरने व कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। संबंधित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकर्ता का कार्य अंधे के तीर की तरह होता है। जब तक उसे ज्ञान न हो कि उस क्षेत्र में कितना कार्य हो चुका है ? किस विधि से कार्य किया गया है ? और उससे क्या निष्कर्ष प्राप्त हुए है ? तब तक वह न तो समस्या का निर्धारण कर सकता है, और न ही उसकी रूपरेखा तैयार करके कार्य को सम्पन्न ही कर सकता है। इसका महत्व इस प्रकार स्पष्ट हो जाता हैः

गुड, बारतथास्केट्स– **''एक कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने क्षेत्र में हो रही औषधिक संबंधी आधुनिकतम खोजों से परिचित होता रहे, उसी प्रकार शिक्षा के जिज्ञासु छात्र, अनुसंधान के क्षेत्र में कार्य करने वाले तथा अनुसंधानकर्ता के लिए भी उस क्षेत्र से संबंधित सूचनाओं एंव खोजों से परिचित होना आवश्यक है।''**

संबंधित साहित्य के अध्ययन के पुनरावलोकन की आवश्यकता

संबंधित साहित्य के पुनरावलोकन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से है–

- शोधकार्य योजना बनाने व क्षेत्र विशेष में किए गए कार्यो का पुर्ननिरीक्षण करता है। गुणात्मक एंव मात्रात्मक विश्लेषण शोधकर्ता को एक दिशा संकेत देता है।
- पूर्व योजनाओ की जानकारी से परिचित होने व उनका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने में आवश्यक है।
- यह अध्ययन की समस्या को साधन प्रदान करता है। शोध की समस्या के चयन में सहायता करता है। इसकी सहायता से अध्ययन के परिणामों और निष्कर्षो पर वाद–विवाद किया जा सकता है।
- समस्या के सीमांकन में सहायता करता है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा के उद्देश्य

संबंधित साहित्य की समीक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैंः (कौल, 2009)

i. शोधकर्ता को अपने अध्ययन को परिभाषित और परिसीमित करने में सक्षम बनाना। साहित्य का ज्ञान शोधकर्ता को समस्या और उद्देश्यों को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप से परिभाषित करने में सक्षम बनाता है।

ii. अनुसंधान पद्धति के बारे में समझ प्रदान करना

iii. सांख्यिकीय विधियों के बारे में अंतर्दृष्टि देना जो परिणामों की स्थापना या परिणामों की वैधता की खोज से संबंधित हैं।

iv. शोधकर्ताओं को समस्या क्षेत्रों की पहचान करने में सक्षम बनाना

संबंधित साहित्य की समीक्षा के स्रोत

यह उन परिकल्पनाओं को विचार प्रदान करता है जो समस्या के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण होते है। अनुसंधान में संबंधित साहित्य की समीक्षा का स्रोत संबंधित साहित्य की समीक्षा में बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह शोधकर्ताओं उसकी जांच के दौरान समस्या के विभिन्न पहलुओं के बारे में गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। यह व्यापक रूप में मूल्यवान और तुलनात्मक डेटा प्रदान करता है जो किसी शोध का आधार निर्धारित करते हैं और अध्ययन के औचित्य की व्याख्या करते हैं।

वर्तमान अध्ययन के लिए, शोधकर्ता ने संबंधित पुस्तकों, लेखों, शोध पत्रों, संदर्भ पुस्तकों, थीसिस/शोध प्रबंध के सार, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, आदि की समीक्षा की है। संबंधित साहित्य की समीक्षा करने का विचार केवल वर्तमान अध्ययन को पृष्ठभूमि प्रदान करना था। हालांकि शोधकर्ता को ऐसा कोई अध्ययन नहीं मिला जो वर्तमान कार्य के सभी पहलुओं से सीधे संबंधित हो।

- रंजय कुमार पटेल (2021) ने अपने अध्ययन शैक्षिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में मीमांसा दर्शन की उपादेयता में संस्कृत साहित्य के आधार पर मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। अध्ययन के निष्कर्षो के अनुसार दर्शन ही शिक्षा के लक्ष्यों, पाठ्यक्रमों एवं उपयोगी शिक्षण विधियों को निर्धारित करता है। दर्शन की सहायता के बिना कोई भी शैक्षिक योजना सफल नहीं हो सकती है। इसी के साथ प्राचीन समय से ही भौतिक जीवन की तुलना में दार्शनिक जीवन को श्रेष्ठ माना जाता रहा है। शिक्षा और दर्शन का एक ही लक्ष्य है मानव जीवन की उन्नति करना है। अतः उपरोक्त इन सन्दर्भों की दृष्टि से मीमांसा दर्शन की उपादेयता स्वयं सिद्ध होती है।
- शोभा, वी के (2012) के द्वारा किये गए अध्ययन से पता चला कि केरल में उच्च माध्यमिक स्तर के बौद्धिक रूप से बेहतर छात्रों की कुछ विशेष शैक्षिक आवश्यकताएं हैं। पुरुष छात्रों की तुलना में महिला छात्रों की अधिक शैक्षिक आवश्यकताएं होती हैं। सरकारी स्कूल के छात्रों की उच्च शैक्षिक आवश्यकताएं है। परिणामो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि शैक्षिक योग्यता और माता–पिता की वार्षिक आय बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण पाए गए। लेकिन माता–पिता की व्यावसायिक स्थिति का छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।
- ओगोट, मैकेंज़ी और दूबे (2008) जहाँ विकलांग छात्रों को ऐतिहासिक रूप से अलग विशेष स्कूलों में शिक्षित किया जाता रहा है, वहीं मुख्यधारा के समावेशी स्कूल एक लागत प्रभावी विधि प्रदान करते हैं। समावेशी शिक्षा बहुसंख्यकों तक पहुंचने में सक्षम है और विकलांग छात्रों को उनके परिवारों और समुदायों से अलग होने से बचाती है।
- गोर्डाना स्टेनकोवस्का, सलागाना एंजेलकोस्का और स्वेतलाना पांडिलोस्का ग्रनकारोस्का (2009) प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार है और उसे सीखने का एक स्वीकार्य स्तर हासिल करने और उसे आगे बढ़ाने का अवसर दिया जाना चाहिए। प्रत्येक बच्चे में अद्वितीय विशेषताएं, रुचियां, क्षमताएं और सीखने की आवश्यकताएं होती हैं। इसलिए शैक्षिक प्रणाली को उचित रूप से डिजाइन किया जाना चाहिए और शैक्षिक कार्यक्रमो को इन विशेषताओं और आवश्यकताओं की व्यापक विविधता को ध्यान में रखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

- मास्लो (1943) मनुष्य लक्ष्य प्राप्ति से प्रेरित होता है। लक्ष्यों को प्राप्त करने से मनुष्य अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। आवश्यकताओं को महत्व के क्रम में मानसिक रूप से प्राथमिकता दी जाती है। अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने से पहले कम तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। किसी व्यक्ति के कार्यों को निम्न–प्राथमिकता वाली आवश्यकताओं को पूरा करने पर केंद्रित होना चाहिए तत्पश्चात उच्च–प्राथमिकता वाली आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए।

6. अध्ययन क्षेत्र

वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का लक्ष्य चरित्र निर्माण, व्यवसायिक प्रशिक्षण, सत्य की जिज्ञासा, आंतरिक एवं बाह्य इंद्रियों पर नियंत्रण, उच्चतम सहन शक्ति, मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा, नैतिकता का रोपण, कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत करना आदि हैं। इनके अलावा वेदांत दर्शन के माध्यम से आदर्श विद्यालयों की स्थापना, उत्तम शिक्षा प्रणाली की स्थापना की कल्पना को साकार किया जा सकता है। इसलिए, इस अध्ययन में छात्रों की विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओ की पूर्ति और शैक्षिक समस्याओं के निराकरण के लिए काफी संभावनाऐं है।

7. अध्ययन का सीमांकन

प्रस्तुत अध्ययन उदयीमान शैक्षिक आवश्यकताओं के परिदृश्य में वेदांत दर्शन में उल्लिखित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा का समीक्षात्मक अध्ययन तक ही सीमित रहेगा।

8. शोध अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता द्वारा वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया जाएगा। यह वर्णनात्मक शोध अध्ययनों में सबसे लोकप्रिय विधि के रूप में सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली विधि है। यह विधि वर्तमान स्थिति के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन, विश्लेषण और विचारों के संदर्भ में जानकारी एकत्र करने में सहायक होगी (कोठारी, 2004)।

9. सूचना के प्रारंभिक स्त्रोत

उद्देश्य प्राप्ति हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध में मुख्यतः वेदांत दर्शन, तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा संबंधित पुस्तकों, व्याख्यानों एवं विचारों का संकलन किया गया है।

10. द्वितीय स्त्रोत

ऑनलाईन स्त्रोत, वेदांत दर्शन शिक्षा से संबंधित पत्र.–पत्रिकाएं, पूर्व के शोध–पत्र, शोध प्रबंध, पूर्व शोधकर्ताओं से विचार–विमर्श आदि।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

i. रंजय कुमार पटेल. शैक्षिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में मीमांसा दर्शन की उपादेयता. Int J Sanskrit Res 2021;7(3):39–44.

ii. हेरोल्ड जे. मोरोविट्ज़ (2004) शिक्षा में तत्वमीमांसा का महत्व, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आईएसबीएन–13ः 978–0195173314

iii. लाल, आर. बी., पलोड़, एस. (2012). शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।

iv. ओड़, एल. के. (2016). शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर. ISBN: 978–93–5131–223–9.

v. सक्सेना, एन. आर. एस. (2009). प्रिन्सिपल ऑफ एजुकेशनआर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।

vi. निगम, एस. (2008). भारतीय दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN: 978–81–208–2416–4.

vii. उपाध्याय, डी. एस. (2007). मीमांसा दर्शनम्. सत्यधर्म प्रकाशन, नई दिल्ली।

viii. सिन्हा, एच. पी. (2018). भारतीय दर्शन की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. ISBN: 978–8120821446.

ix. प्रो. पंड्या के.एम. (2013). मीमांसा व्याख्या के नियम. वॉल्यूमरू 2. अंकरू 9. आईएसएसएन नंबर 2277 – 8160. पृष्ठ सं. –83–84

x. Britannica, T. Editors of Encyclopedia (2021). Yoga. Encyclopedia Britannica. https://www.britannica.com/topic/Yoga-philosophy

xi. Dr. S. Radhakrishnan ; Indian Philosophy Vol. I and II

xii. Maslow, A. H. (1943). A theory of human motivation. Psychological Review, 50(4), 370-96.

xiii. Educational Needs Analysis. Retrieved from https://studentshare.org/nursing/1453396-educational-needs